भारतीय भक्तिमार्गी रामस्नेही परम्परा का स्वरुप

प्रो. (डॉ.) सोहन राज तातेड़,

पूर्व कुलपति सिंघानिया विश्वविद्यालय, राजस्थान

भारतीय भक्तिमार्गी रामस्नेही परम्परा के संस्थापक स्वामी रामचरण युगपुरूष थे। उनका अविर्भाव अठारहवीं शताब्दी में हुआ था। यह समय उथल–पुथल का था। राजनैतिक, धार्मिक एवं सामाजिक स्तर पर देश और विशेषकर राजस्थान प्रदेश की दशा पर्याप्त चिंतनीय थी। विधर्मियों का आक्रमण एव बर्बरता का शिकार हुई जनता–प्रभु–स्मरण के सहारे जीने का प्रयास कर रही थी। अठारहवीं शताब्दी आते – आते धार्मिक आडम्बरों की चरम सीमा भी आ पहुंची। राजस्थान स्वामी रामचरण की जन्म तथा कर्मभूमि, स्वयं धार्मिक असंतुलन की चपेट में था।

घोर निराशा के इस युग में समाज में शांति, सौमनस्य एवं सहयोग की भावना को सुदृढ़ करने की दिशा में संतों ने सराहनीय कार्य किया। उनकी वाणियों में काम, क्रोध, लोभ, मोहादि विकारों से बचने की सतत् प्रेरणा अभिव्यंजित हुई है। उन्होंने समाज को अपने उपदेशों द्वारा सचेत किया कि अहंकारी मनोवृत्ति मानव को मानव नहीं रहने देती। जीवन की क्षणभंगुरता के प्रति उदासीन रहकर मनुष्य अपने गंतव्य से पराङमुख होकर तुच्छ भागोदि में आबद्ध हो जाता है। अन्ततोगत्वा दीपशिखा पर अनुक्त पतंगे की भांति उसके जीवन का करूण अंत हो जाता है।

संतों के इस उपदेश से एक बार तो सम्पूर्ण राजस्थान भक्तिमार्गी वैष्णव भक्ति–भावना से भर उठा था, किन्तु कालान्तर में इस भक्ति भावना का स्थान धार्मिक रूढ़ियों एवं पाखण्डों ने ले लिया। स्वामी रामचरण स्वयं वैष्णव गद्दी के संत कृपाराम से दीक्षित हुए थे, पर बाद में पंथ में खड़–भड देख सगुणोपासना से विरत हो गये और भीलवाड़ा में आकर निर्गुणोपासना का प्रचार आरंभ किया। इसे इन्होंने 'रामधर्म' की संज्ञा दी और संगठन को **'रामस्नेही संप्रदाय'** कहा।

अब प्रश्न यह उठता है कि भक्तिमार्गी अनेक सगुण–निर्गुण पंथों के होते हुए स्वामीजी ने नये पंथ की स्थापना क्यों की। वस्तुतः स्वामी रामचरण साधु वेश धारण करने के पहले जयपुर राज्य के उच्च पदाधिकारी थे। उन्होंने विरागी होने के बाद विभिन्न पंथों में व्याप्त पाखण्डों को देखा। अपने विभिन्न ग्रंथों में उन्होंने साधु–समाज की कुरूपताओं के चित्र प्रस्तुत किये हैं। उन्होंने सच्चे साधु के लक्षण निर्धारित किये और रामस्नेही साधुओं में उन लक्षणों को साकार देखना चाहा।

संतों का कार्य मेघ माला के समान है। जिस प्रकार समुद्र से जल पाकर मेघ–माला विश्वभर में छा जाती है और अपने मधुर शीतल जल से तृप्त धरित्री को शीतल, शांत व उर्वर बनाती है, उसी प्रकार संत जन भी मेघ की तरह चारों ओर फैलकर त्रिविध तापों से जलती झुलसती मानव जाती को निःश्रेयस् की जल धाराओं से अभिषिक्त कर देते हैं। गोस्वामी तुलसीदासजी ने संतों को 'जंगमतीर्थराज' कहा है, सचमुच संतजन चलते फिरते तीर्थराज प्रयाग हैं।

संतों की वाणी ने लोक मंगल के लिए मधुर व कटु दोनों प्रणालियों को अपनाया है। लक्ष्य एक है, गंतव्य एक है, साध्य एक है अन्तर केवल पथों का व साधनों का है। समुद्र में जहाज चल रहा हो, प्रचण्ड लहरें हों, घना अंधेरा हो, झंझा के झौंके हो, ध्रुवतारा घनाच्छन्न हो उस समय कर्णधार को पथ भ्रष्ट होने से बचानेवाला एक मात्र दिशा–सूचक यंत्र होता है, इसी के बल पर मल्लाह घबराता नहीं है अपितु जहाज को तूफानों से निकालकर किनारे पर पहुंचा सकता है। इसी तरह संतों की वाणी भी अंधेरे मे भटकती, तूफानों से टकराती मानवता के लिए दिशा सूचक यंत्र है, जो उसे बराबर गन्तव्य पथ का निर्देश करती है।

उपर्युक्त भाव को ध्यान में रखकर ही स्वामी रामचरण ने 'अणभैवाणी' का उद्‌बोधन दिया इससे तत्कालीन जन जीवन पर गहरा प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। उन्होंने समाज में व्याप्त कुरीतियों एवं रूढ़ियों पर प्रहार किया और समाज को उनसे विरत होने की प्रेरणा दी। एतदर्थ समाज के रूढ़िवादियों से उन्हें संघर्ष भी करना पड़ा था पर वे अपने लक्ष्य पर अडिग रहे।

'अणभैवाणी' के निर्मल महासरोवर में गोरख, नामदेव, कबीर, दादू आदि कितने ही भक्तिमार्गी संतों के स्वरूप की शुभ्र झलक हम पाते हैं। वैराग्य और अनुराग की सुंदर धूप छांह जहां–तहां देखने में आती है। सगुण–निर्गुण के बीच का वाचनिक भेद सहज ही तिरोहित हो जाता है। सुरत–निरत का गगन हिंडोला मन को बरबस खींच लेता है। वाणी के प्रखर तेज के सामने धर्म–मजहब की आंखें चकाचौंध में पड़ जाती है। मूढग्राह के पैर उखड़ जाते हैं। मानवता का रूप निखर उठता है।

संतों की वाणी आज भी उपयोगी है, कल भी उपयोगी थी और आगे भी उपयोगी रहेगी। उसमें समाज को या सम्पूर्ण मानवजाति को शक्ति देने की असीम सामर्थ्य है। कोई भी राष्ट्र केवल धन के बल पर, वैज्ञानिक आविष्कारों के बल पर, अन्तर्महाद्वीपीय प्रक्षेपणास्त्रों के बल पर या अन्तरिक्ष विजय के बल पर, महान नहीं बन सकता। राष्ट्र की गरिमा की आधार शिला चरित्रवान् व्यक्ति है। संतों की वाणी में व्यक्ति व राष्ट्र के चरित्र गठन की अद्‌भुत शक्ति होती है। प्रेम, दया, अहिंसा, सत्य, उपकार आदि के वे उदात्त भाव हैं, जिनके अभाव में मनुष्य बर्बर हिंस्त्र पशु मात्र रह जायगा। यह विजिगीषा, यह जिघांसा, यह रणोन्माद–मानवता के लिए कलंक है। सन्तों ने प्रारंभ से ही अपनी वाणी द्वारा नैतिकता, शील, सदाचार, निष्ठा व त्याग का उद्‌घोष किया है, राह भूले संसार को समझाया है। यह बात और है कि धन–पद लिप्सु लोगों ने न सुना हो या सुनकर भी उनकी अवहेलना कर दी हो।

संत का काम समझाना है। वह युग–युग से समझाता आ रहा है। कौन सुनता है, कौन नही सुनता, इसकी उसे परवाह नहीं। वह अपनी आत्मा की आवाज को स्पष्टता व निर्भीकता से बुलंद करता है। उन संतों के 'सबद' बाण सुनने वालों को सीधे लगते हैं। उनके बाहर तो घाव नहीं, पर भीतर चकनाचूर हो जाता है।

सन्तवाणी की दो धाराएं हें एक धारा सींचती हुई बहती है – जीवन के उपवन को, पर मानवजीवन में जो अशिव है, अशुभ हे, जीवन में जो जड़ता, अंध विश्वास, बैर विरोध, हिंस्त्र भाव हैं – उसके लिए सन्त वाणी की दूसरी धारा प्रलयवन्या बन कर उसे बहाती, डुबाती, उखाड़ती, गिराती–प्रचण्ड वेग से बही है। संत के एक हाथ में निर्माण का वरदान है तो दूसरे

में ध्वंस का अभिशाप। निर्माण व ध्वंस दोनों कार्य संत वाणी एक ही भाव से एक ही वृत्ति से करती है। वहां न हर्ष है न विवाद।

संत वाणी का प्रमुख गुण है, निर्भीकता। संतों को जो कुछ बुरा लगा, उसका विरोध तेज, कड़े, खरे, नुकीले शब्दों में खुल कर किया, उसका भंडाफोड़ किया, यह कार्य अत्यन्त निर्भयतापूर्वक पर आशक्ति शून्य, द्वेष शून्य केवल मात्र मंगल की पुनीत भावना से अनुप्राणित होकर किया गया। इस कटुता में भी अद्‌भुत मिठास है। जब संतों ने निर्माण की बात कही तो बड़े प्रेम से, स्नेह सने मधुर शब्दों में, संत वाणी का आध्यात्मिक पक्ष चाहे समाज के लिए अगम्य हो, लेकिन उनके द्वारा चरित्र को ऊंचा उठाने वाले जो उपदेश दिये गये हैं, उनसे मानव जाति सदैव ही लाभ उठा सकती है। अंध विश्वासों व बाह्याडम्बरों की विडम्बना सन्त वाणी द्वारा जिस रूप में दिखाई गई हैं, वह समाज का नेत्रोन्मीलन करने के लिए पर्याप्त है।

इसी परिपेक्ष्य में रामस्नेही सम्प्रदाय के संतों का विशाल वाणी भंडार समाज के प्रति उस शाश्वत सन्देश से परिपूर्ण है, जिसका सूत्रपात कबीर के युग से हुआ था। संतों की सुदीर्घ परम्परा में **रामस्नेही सम्प्रदाय** के संतों का विशेष महत्व है, समाज के विक्षुब्ध वातावरण से संत्रस्त मानवों में **'रामप्रेम'** की सुरसरिता प्रवाहित करके इस संप्रदाय के संतों ने सभी को उसमें अवगाहन करने का सुअवसर प्रदान किया है। उनके मत से मानव जीवन की सर्वोत्कृष्ट उपलब्धि 'राम' की प्राप्ति है। अतएव अहर्निश उसी के नाम में रत रहना चाहिए।

—

सुख का सागर राम है, दुःख का भंजन हार।
रामचरण तजिये नहीं, भजिए बारम्बार।।

रामस्नेही सम्प्रदाय की दार्शनिक पृष्ठभूमि को लेकर किये गये विवेचन से सिद्ध होता है कि चिन्तन की जो अजस्त्र धारा श्रौत दर्शन से प्रारंभ होकर निर्गुणोपासक संतों तक आकर प्रवाहमान होती रही, उसमें रामस्नेही सम्प्रदाय ने भी अवगाहन किया। "सार–सार को गहि रहे, थोथा देय उड़ाय" की उक्ति को चरितार्थ करते हुए इस सम्प्रदाय के समन्वयी एवं युग दृष्टा संतों ने ब्रह्म की अनेकानेक संज्ञाओं में से केवल निर्गुण निराकार ब्रह्म को 'राम नाम' प्रतीक रूप में वरण किया। अतः रामस्नेही 'नाम से विख्यात हुए। औपनिषदिक प्रभाव के कारण ब्रह्म

के निराकार स्वरूप पर दृढ़ आस्था होने पर भी इस सम्प्रदाय ने उदारवादी दृष्टिकोण अपना कर सर्वप्रथम रामोपासक आशुतोष भगवान् शंकर को माना है जिन्होंने 'राम रहस्य' को अपनी भार्या भगवती उमा से प्रकट किया था। सगुण एवं निर्गुण दोनों प्रकार के उपासक ब्रह्म को जिस नाम से सम्बोधन करते रहे हैं, उस नाम को अपनी साधना का मुख्य आधार बनाकर रामस्नेही सम्प्रदाय ने अपनी उच्चस्तरीय सूझबूझ का परिचय दिया है।

सामाजिक कुरीतियों एवं अंध विश्वासों के निराकरण के लिए अन्य संतों ने जैसी कर्कश और कटु भाषा का उल्लेख किया है, इस संप्रदाय के संतों ने वैसा नहीं किया। इन संतों के कथन का ढंग अधिक व्यवहारिक और तर्कपूर्ण रहा है। जैसे वर्णावर्ण की विषमता के संदर्भ में इस सम्प्रदाय में कहा गया है कि मानव–मानव में विभेद व्यर्थ और बाह्य है।

कुछ विद्वानों की दृष्टि में भक्तिमार्गी **रामस्नेही सम्प्रदाय** भारतीय चिंतन धारा की वह संगमस्थली हैं जहां आकर साधना की अनेक सरिताएं समाहित हुई हैं। रामस्नेही संतों की सरल, सुखद एवं सहज बोधगम्य लोकधर्मी वाणियाँ मानव को आध्यात्मिकता की ओर लाने में सक्षम हैं। वाणी साहित्य के दार्शनिक महत्व को प्रकाश में लाने का उद्देश्य ही इस शोध प्रबन्ध का मुख्य विषय रहा है। उत्तर भारत में अधिक न सही, परन्तु राजस्थान, मध्यप्रदेश का उत्तरी अंचल, गुजरात के पूर्वीभाग में 'रामधुन' को गुंजारित करने का श्रेय इस सम्प्रदाय को प्राप्त है।

आज से हजारों वर्ष पूर्व जब हमारे देश की भाषा संस्कृत थी तब सारे प्राचीन ग्रंथ वेद, पुराण, भागवत, गीता, दर्शन शास्त्र आदि में ईश्वर–जीव–माया के सिद्धान्त संस्कृत भाषा या देववाणी में ही निर्मिति होते रहे। परन्तु मध्यकालीन युग में आमजन को समझाने के लिए, संतों ने प्राचीन परम्परा को लोक–व्यवहार में तथा लोक भाषा में अपने सिद्धान्तों का वर्णन किया। जिनमें प्रमुखतः गुरूनानक, श्री रामानन्दाचार्य, कबीर रैदास इत्यादि संत प्रमुख हैं। राजस्थान की भूमि शूरवीरों, दानवीरों और भक्तिवीरों की भूमि रही है और यहां अनेक संतों ने अवतरित होकर जन–मानस को आध्यात्मिक धारा में अवगाहित किया है जिनमें दादूदास, लालदास, रज्जब, सुंदरदास, दरिया साहब प्रमुख हैं।

राजनैतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से भारतवर्ष में राजस्थान का अपना महत्व है। जब उपर्युक्त दृष्टि से समाज भटक रहा था, ऐसे समय में केवल संत ही अपने नैतिक

बल पर समाज को सही रास्ते पर लाने में सक्षम हुए। इसी परंपरा में शाहपुरा रामस्नेही संप्रदाय के संस्थापक स्वामी रामचरण ने आकर पश्चिमी भू–भाग पर अपनी पैठ बनाई। प्रस्तुत शोध आलेख में भारतीय दर्शन की परंपरा में यहां की संस्कृति एवं सांस्कृतिक चेतना को इंगित करते हुए, भारत की ऋषि परंपरा की अनवरत धारा में मध्य युग के प्रमुख संतों की दार्शनिक विचारधारा क्या है इस पर विचार किया गया।

इस आलेख मे मुख्य रूप से शाहपुरा की रामस्नेही परंपरा में स्वामी रामचरण ने इस धरा पर संत वेश धारण कर जन–मानस को क्या दिया ? व समाज को इनकी क्या देन रही है? इस पर विचार किया गया है। स्वामी रामचरण के साथ–साथ उनके बारह प्रमुख शिष्यों ने स्वामीजी के सिद्धान्तों का प्रचार–प्रसार कर, सम्प्रदाय का विकास करने में योगदान किया इस बात का विस्तार से मनन किया गया है। स्वामी रामचरण व इनके द्वादश प्रमुख शिष्यों ने अपनी वाणियों में दार्शनिक चिंतन, लोक पक्ष एवं जनमानस में क्या प्रभाव या छाप छोड़ी इसका गहन चिंतन इस शोध के माध्यम से हुआ है।

यद्यपि उपर्युक्त विषय में कई शोध हुए हैं, और आगे भी होंगे, क्योंकि साहित्य का अवलोडन तो होते रहना चाहिए। संतों की वाणी चिंतनशील है, मानव मात्र के लिए मार्ग दर्शक है। मानव को निराशा के भंवर से निकालने का काम संतवाणी का है, इसके खोज की आगे भी पूरी अपेक्षा है। संत साहित्य भारतीय शास्त्रों का अभिन्न अंग हे, इसका विस्तार से शोध हो यह आवश्यक है, कारण कि संत साहित्य मानव को जीवन की प्रत्येक बुराईयों से निकालकर आध्यात्मिकता की ओर प्रशस्त करता है। वर्तमान समय में भी समाज में हिंसा, असत्य, भ्रष्टाचार, आतंकवाद, सांप्रदायिक वितण्डावाद की आंधि चल रही हे इसमें से उबारने का कार्य अगर कोई कर सकता है तो वह है आध्यातिमक चेतना जागृत कर मानव मात्र को व राष्ट्र को विकास के पथ पर अग्रसर करने वाला कोई अद्‌भुत संत ही हो सकता है।

शास्वत सन्देश – संत एक ऐसे लोक का संदेश लाता है जो शाश्वत है, जिसमें देश और काल अपने भेद भूलकर एक में मिलते हैं, जिसे हम प्रेम का लोक कहते हैं, प्रेम ही मानवीय ह्रदय की वास्तविक शक्ति है। जिस क्षण मन में प्रेम का उदय होता है, मानव के लिए सेवा

और भक्ति का अपूर्वद्वार खुल जाता है। वह अपने चारों ओर सतयुगी भावों का स्पन्दन उतपन्न करते हैं।

आज के वैज्ञानिक व भौतिकवादी युग में जब कि चारों ओर अविश्वास, घृणा व युद्ध का वातावरण है, उस समय संतवाणी के अमर संदेश की तो और भी आवश्यकता है। संतों का संदेश सार्वकालिक, सार्वभौम होता है। संतों की वाणी व्यक्ति, समाज, राष्ट्र व समस्त विश्व के लिए कल्याणकारी है। सन्त–वाणी का मूलाधार सामाजिक अन्तर्विरोधों, विभेदों और विभिन्नताओं में अन्तर्निहित मानवतावादी एकता है। उनका दृष्टिकोण उदार व मुक्त है, उसमें जीवन के उन्नयन की असाधारण शक्ति है।

संतों का मार्ग त्याग का है, भोग का नहीं, विनय का है, दंभ का नहीं, प्रेम का है, द्वेष का नहीं, उदारता का है, संकीर्णता का नहीं, भेद ऊपरी तह पर हैं। 'मृत्तिका ही सत्य है और सब वाणी का विजृंभण मात्र है। 'कनक कुण्डल न्यायेन' सब में एक ही ब्रह्म तत्व प्रोद्भासित है। संत–साधना की सुदृढ़ मूल भित्ति अहिंसा, सत्य, प्रेम, दया, क्षमा व समन्वयात्मक एकता से निर्मित है, जिस पर उनकी वाणी का अभ्रंलिहा भाव प्रासाद खड़ा है।

संत वाणी में शाश्वत सन्देश है, उसी आधार पर मानवता को द्वेष, घृणा, अविश्वास की पंकिल भूमि से निकाला जा सकता है। संत वाणी सुधा का अविरल प्रवाह है। **'सब एक ही है, सब में वही है, फिर द्वैत कहां!** संतों की ऐसी ही वाणी विश्व में बन्धुता, सहृदयता व उदारता का वातावरण उत्पन्न कर सकती है ऐसी ही वाणी से व्यक्ति का चरित्र निर्मल बन सकता है, समाज सुधर सकता है और विश्व में शांति का अटल साम्राज्य स्थापित हो सकता है। 'तुमुल कोलाहल कलह' भरे गर्मी से जलते झुलसते विश्व के लिए संत–वाणी सजल बरसात है और पतझड़ से उदास मानवता के लिए संत–वाणी मन्द मलयानिल है।

युग का आवाह्न व आयोजन – हजारों वर्षों की तिमिस्त्रा के बाद हमारे महान राष्ट्र में स्वतंत्रता का सूर्योदय हुआ है। राष्ट्र के प्राणों में विकास की दुर्दम लालसा है, उसके लिए वह पथ–सन्धान में लगा है। एक ओर विज्ञान व भौतिकता का पथ है, जिसमें चमक है, आकर्षण है, साथ ही संकट व खतरे हैं, दूसरी ओर पूर्वजों की विशाल आध्यात्मिक संपदा है।

न एक को पूरी तरह से ग्रहण कर पा रहा है और न दूसरे को छोड़ते ही बनता है। राजनीति में दुहरे खेल चलते हैं। व्यवहार में पश्चिम का अनुकरण है, वाणी में संत के शब्द हैं।

विश्व में आज जो हमारा नाम है वह विज्ञान के बल पर नहीं अपितु हमारा जो महत्व है, वह इस कारण है कि हम पंचशील की बात करते हैं, प्रेम की बात कहते हैं, सहअस्तित्व का नारा लगाते हैं, शोषित व पीड़ित राष्ट्रों की वाणी को बुलन्द करते हैं, उनका पक्ष लेते हैं, राजनीति के कूट वातावरण में सत्य का प्रयोग करते हैं – यह निश्चय ही संतों का पुण्य–प्रसाद है। यह ऋषियों की वाणी है, जिसने भारत के गौरव को बढ़ाया है।

वर्तमान में देश में असत्य, अंधविश्वास, भ्रष्टाचार, कर्त्तव्यहीनता और चरित्र हीनता का बोलबाला है। ऐसे समय में केवल संत–वाणी दिशा निर्देश दे सकती है। संतों ने परतंत्र भारत में लोगों को संभाला, जगाया, चेताया, उठाया और आगे बढ़ाया है। आज स्वतंत्र भारत जब आगे बढ़ने के लिए उद्विग्न हो, उस समय संतों के उत्तराधिकारियों व संप्रदायों के गुरूओं को ठीक मार्ग बताना चाहिए। यह युग की पुकार है, युग का आवाह्न है, युग की ललकार है।

राजनीतिज्ञ रात दिन अपनी समस्याओं, चुनावों तथा वैयक्तिक स्वार्थों में जुटे रहते हैं वे राष्ट्र का ठीक मार्ग दर्शन नहीं कर सकते। ऐसे समय में संतों का चिंतन ही राष्ट्र का पथ प्रदर्शन करने में समर्थ हो सकता है। संतों की वाणी के द्वारा ही व्यक्ति, समाज व राष्ट्र के जीवन को अत्यन्त निर्मल बनाया जा सकता है।

आज लोग लड़ रहे हैं कभी भाषा को लेकर, कभी पन्थ मजहब और मत मतान्तरों को लेकर, कभी राज्यों के टुकड़ों को लेकर, इस लड़ाई के मूल में कहीं व्यक्तिगत स्वार्थ हैं। कहीं लुप्त नेतृत्व को जिन्दा करने का सवाल है तो कहीं खोई हुई साख कायम करने की पैंतरेबाजी है। साधारण जनता इस माया–जाल को समझ नहीं पाई। जनता को सत्य पथ चाहिये, पाथेय चाहिये, पथ निर्देशक चाहिए, प्रकाश चाहिये – यह केवल साधु संतों के जीवन से संभव है। संतों के जीवन की पुस्तक सबके लिए खुली है, जहां मन, वाणी व कर्म में सामंजस्य है। जहां एकता व अभेद का पठन पाठ है, द्वैत व भेद का जहां खुलकर विरोध है। ऐसे ही उदार संतों की वाणी की धारा पुनः प्रवाहित होनी चाहिए, तभी राष्ट्र के जीवन में नये प्राणों का संचार हो सकता है।

भारतीय भक्तिमार्गी रामस्नेही परम्परा के संस्थापक स्वामी रामचरण का विशाल साहित्य उनकी व्यक्तिगत साधना की अनुभूतियों से ओतप्रोत तो है ही, समाज–जीवन के प्रति उनके दृष्टिकोण का भी परिचायक है। उन्होंने एक ओर अध्यात्म के ऊंचे शिखर का स्पर्श किया है तो दूसरी ओर समाज–जीवन के धरातल पर इतना अधिक चले कि आज भी उनके उदार चरणों के अनेक निशान पश्चिमी भारत की धरती पर दृष्टिगोचर होते हैं। उनका साहित्य हिन्दी–साहित्य की अमूल्य निधि है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. अद्वैत ब्रह्मसिद्धि एक अनुशीलन, डॉ. दीरघराम रामस्नेही, वाङ्मय प्रकाशन, जोधपुर, 1996
2. चरणदास, डॉ. त्रिलोकी नारायण दीक्षित
3. पंचरत्न स्त्रोत, संत गगनराम रामस्वरूप बाड़मेर, रामस्नेही युवा संत, परिषद् वर्ष 5 अंक 1
4. रामस्नेही संप्रदाय की दार्शनिक पृष्ठभूमि, डॉ. शिवाशंकर पांडेय, रामस्नेही साहित्य शोध संस्थान, दिल्ली, 1973
5. रामस्नेही संप्रदाय और साहित्य, डॉ. चैतन्य गोपाल निर्भय, हिन्दी साहित्य परिषद् अहमदाबाद, 1995
6. रामस्नेही संप्रदाय, डॉ. राधिका प्रसाद त्रिपाठी, आनंद प्रकाशन दीवानी मिसिल फैजाबाद,
7. रामस्नेही धर्म प्रकाश, संपादक–चौकसरामजी, श्रीवैंकटेश प्रेस, बम्बई, 1987
8. रामस्नेही मत दिग्दर्शन, पं. उत्साहराम प्राणाचार्य, श्री साहित्य प्रकाशिका समिति खेड़ापा, 1962
9. राजस्थानी साहित्य के ज्योतिष्पुंज, डॉ. गोवर्धन शर्मा, 1968